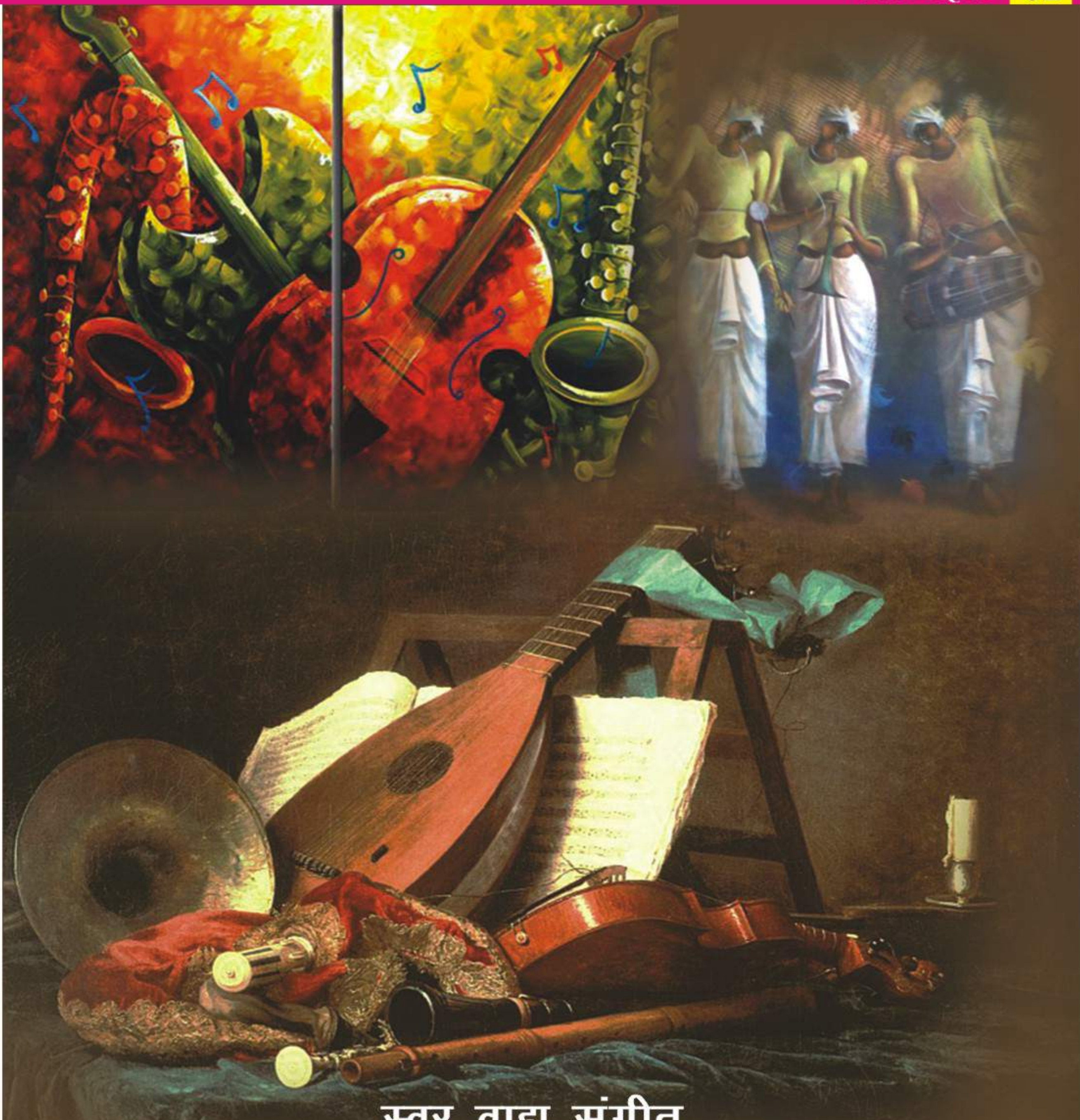

स्वर वाद्य संगीत
सितार / सरोद / वायलिन / दिलरुबा / बांसुरी / गिटार / इसराज

द्वयधिष्ठानाः स्वरावैणाः शारीराश्च प्रकीर्तिताः ।
एतेषां समप्रवक्ष्यामि विधानं लक्षणन्वितम् ।।
—नाट्य शास्त्र 28 / 12

स्वर उत्पत्ति के दो प्रमुख स्थान हैं – वीणा (तार वाद्य) एवं मनुष्य शरीर (शरीर वीणा)

अध्याय 1

परिभाषाएँ

''नाद''

''संगीत'' सृष्टि का वह महत्वपूर्ण धागा है, जिसके बिना संपूर्ण जगत नीरस है। संगीत का मूलाधार नाद है। यदि कहें कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड, नादमय है तो अतिश्योक्ति नही होगी। नाद का शब्दिक अर्थ है ध्वनि अथवा आवाज़। संगीतपयोगी मधुर ध्वनि, जिसमें स्थिर और नियमित आंदोलन संख्या होती है उसे 'नाद' कहते है। युगों से चली आ रही संगीत की अनादि पराम्परा का मूल है 'नाद'।

वीणा वाद्य

नाद शब्द न और द इन दोनों अक्षरो से मिलकर बना है। न से नकार और द से दकार, भावार्थ नकार यानि प्राण या वायु तथा दकार का अर्थ अग्नि या ऊर्जा। इन दोनों के संयोग से ही नाद उत्पन्न होता है।
आवाज की उत्पत्ति कम्पन्न से होती है, कम्पन्न को आंदोलन कहते है और आंदोलन द्वारा उत्पन्न आवाज को शोर या कोलाहल भी कहते है।

न नादेन विना गीतं, न नादेन विना स्वरः।
न नादेन विना नृतं, तस्माद्नादात्मकं जगत।।

जिस ध्वनि की आंदोलन संख्या अनियमित और अस्थिर हो जाती है वह कानों को अमधुर लगती है और उसे शोर कहते है। वही ध्वनि नाद बन सकती है जो कर्णप्रिय है और मधुर हैं।
नाद के 2 प्रकार माने जाते है।
(1) आहत (2) अनाहत

(1) आहत

जो नाद किसी घर्षण, आघात द्वारा उत्पन्न होता है या किसी प्रयास द्वारा ध्वनि उत्पन्न की जाती हो, उ स नाद को आहत नाद कहते है।
उदाहरणतया– वीणा, सितार, तानपुरा या कण्ठ द्वारा उत्पन्न की गई ध्वनि। आहत नाद संगीत की उत्पत्ति कर्त्ता है। आहत नाद तीन (3) प्रकार से उत्पन्न होता है (1) आघात (प्रहार) द्वारा जैने– तबला, सरोद, सितार–तानपूरा आदि पर आघात करते है तो ध्वनि होती है। (2) घर्षण द्वारा– बायलिन, सारंगी में गज से इनके तारों पर घर्षण करते है। (3) वायु को भरकर या निकालकर– शहनाई बांसुरी, हारमोनियम आदि वाद्य इसी वर्ग में आते है तथा कंठ़ के द्वारा वायु के द्वारा आवाज उत्पन्न होती है।

(2) अनाहत

अनाहत नाद योग साधना की अनुभूति है। ये उत्पादित स्वयंभू ध्वनि है। ये संगीतपयोगी नही होता क्योंकि यह सबको सुनाई नही देता जैसे कान बन्द करने पर सांयसांय की आवाज। इसे गुप्त नाद भी कहते है।

आहत नाद

↓

संगीतउपयोगी — संगीतअनुपयोगी

(1) संगीत उपयोगी नाद

वह नाद जिसका संगीत में उपयोग किया जा सके, जो कुछ समय तक स्थिर रहे और श्रवणेन्द्रियां उसका अनुसरण कर सके उसे संगीपयोगी नाद कहते है। जैसे : तानपुरा, बांसुरी, सितार आदि की ध्वनि।

(2) संगीत अनुपयोगी नाद

वह नाद जिसका संगीत में उपयोग नही किया जा सके। जैसे– बादलों की गडगडाहट, शोर आदि।

नाद की तीन मुख्य विशेषताए हैः–

1. नाद का छोटापन– बडापन
2. नाद का ऊंचा– नीचापन
3. नाद की जाति अथवा गुण

(1) नाद का छोटापन–बड़ापन

जब किसी वाद्य को या गीत को धीरे से गायन– वादन करते है, तो उसकी ध्वनि बहुत समीप तक ही सुनाई देगी, परन्तु यही ध्वनि जोर से गायन– वादन करने पर अधिक दूर तक सुनाई देगी। जो ध्वनि समीप तक सुनाई दे वो नाद का छोटापन तथा जो ध्वनि दूर तक सुनाई दे वो ध्वनि नाद का बडापन कहलाती है।

(2) नाद का ऊंचा नीचापन

गाते बजाते समय हम ये अनुभव करते है कि स्वर सा से ऊंचा रे, रे, से ऊंचा ग रहता है। जैसे– जैसे हम स्वर की ऊंचाई या बढते क्रम का गायन वादन करते है तो स्वर की ऊंचाई बढती जाती है। इसका कारण है कि नाद या स्वर की ऊंचाई या निचाई उसके कंपन या आन्दोलन संख्या पर आधारित है। उदाहरण के लिये यदि एक स्वर की कंपन संख्या 100(सौ) प्रति सैकिण्ड है और दूसरे स्वर की 150 आन्दोलन प्रति सैकिण्ड, तो यहॉ 100 आन्दोलन संख्या वाला नाद, नीचा है और 150 आन्दोलन संख्यावाला नाद, ऊंचा।

इसी आधार पर सा रे ग म प धनि में नाद ऊंचा होता चला जाता है और सां नि ध प म ग रे में नाद क्रम से नीचा होता जाता है। स्वर का उतार चढाव ही नाद का ऊंचा नीचापन कहलाता है।

(3) नाद की जाति अथवा गुण

प्रत्येक नाद की अपनी पृथक विशिष्ट गुणवत्ता है। नाद की जाति या गुण से हम आसानी से पहचान सकते है कि ये ध्वनि किस साज़ की है या किस व्यक्ति की है। उस विशेषता को नाद की जाति कहते है। एक ही नाद सब वाद्यो में है, तथापि हम नाद की जाति से ही वाद्य को बिना देखे बतला सकते है कि वह स्वर किस वाद्य का है।

श्रुति

''श्रुति'' भारतीय सप्तक का मूलाधार है

श्रुति के सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने लिखा है –''श्रूयते इति श्रुतिः'' अर्थात ऐसी ध्वनि जो कानों को सुनाई दे उसे श्रुति कहते है, पंडित भातखण्डे जी ने श्रुति के सबंध में लिखा है–

नित्यं गीतोपयोगीत्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुतिलक्षणम्।।

अर्थात गीतों में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि जिसे एक दूसरे से पृथक किया जा सके, श्रुति कहलाती है।

सारंगी वाद्य

श्रुति शब्द संस्कृत के ''श्रु'' धातु से बना है श्रु का अर्थ श्रवण करना है।
वह ध्वनि या नाद जो गीत में प्रयुक्त की जा सके तथा एक दूसरे से अलग व स्पष्ट सुनी जा सके, उसे श्रुति कहते है।
संगीतज्ञों ने प्राचीन समय में मधुर नादों में से कुछ ध्वनियां चुनी जो एक दूसरे से कुछ, ऊंचाई पर थी और जिनकी संख्या 22 है। 22 नादों को गाने– बजाने में कठिनाई को देखते हुये इनमें से मुख्य 12 श्रुतियां चुन ली गई और इन्ही से संगीत में गायन वादन होने लगा।
सप्तक के शुद्ध–विकृत मिलाकर 12 स्वर है, उनके नीचे ऊपर (बीच– बीच में) और भी सुरीली ध्वनियां है। श्रुतियों का दर्शन केवल, सारंगी, सितार, बेला व वीणा आदि तार वाद्यों में ही हो सकता है। परन्तु कुशल गायक गले से भी इन श्रुतियों की आवाज निकाल सकते है।

22 श्रुतियां सात स्वरों में इस प्रकार विभाजित है –

स– म– और प, में चार– चार श्रुतियां, रे और ध में तीन– तीन श्रुतियां और ग, नि में दो– दो श्रुतियाँ होती हैं।
प्राचीन ग्रंथकार शुद्व स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते थे, परन्तु आधुनिक ग्रंथकार शुद्व स्वरों को उनकी पहली श्रुतियों पर स्थापित करते है।

प्राचीन स्वर विभाजन

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
			सा			रे		ग				म				प			ध		नि

आधुनिक स्वर विभाजन

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
सा				रे			ग		म				प				ध			नि	

नोट : बडी लकीर वाले कायम स्वर है और बीच– बीच में छोटी लकीरें हैं वे श्रुतियां है।

स्वर

सरोद वाद्य

साधारणतः जब कोई ध्वनि नियमित आंदोलन संख्या वाली हो तो उसे ''स्वर'' कहते है। इसके विपरीत जब कंपन अनियमित व अस्थिर हो उस ध्वनि को शोर या कोलाहल कहते है।

संगीत में प्रयुक्त मधुर, कर्णप्रिय एवंचित्त को आनदित करने वाली ध्वनि को 'स्वर' कहते है। स्वर के विषय में प. अहोबल ने लिखा है।

रन्जयन्ति स्वतः श्रोतृणमिति ते स्वराः

अर्थात ऐसा स्वर जो श्रोताओं के चित्त को आकर्षित करता है, उसे 'स्वर' कहते है।

22 श्रुति से निश्चित अंतर पर 12 श्रुतियों को चुना ये श्रुतियां मधुर है और उनमें ठहराव है, स्वर दो प्रकार के होते है–

स्वर

शुद्व स्वर — विकृत स्वर

(1) शुद्व स्वर

बाहर स्वरों में से मूल सात स्वरों को 'शुद्व स्वर' कहते है। जो स्वर अपने निश्चित स्थान पर रहते है, वो शुद्व स्वर कहलाते है ये प्राकृतिक स्वर कहलाते है, इनकी संख्या 7 है। इन स्वरों के नाम इस प्रकार है –

षडज – सा
रिषभ – रे
गंधार – ग
मध्यम – म
पंचम – प
धैवत – ध
निषाद – नि

(2) विकृत स्वर जो स्वर अपने निश्चित अवस्था (स्थान) से हटकर नीचे या ऊपर गाये अथवा बजाये जाते है, उन्हे विकृत स्वर कहते है। विकृत स्वर की संख्या पांच है– रे, ग, म, ध, नि।

विकृत स्वर के दो प्रकार है।

(1) कोमल विकृत स्वर (2) तीव्र विकृत स्वर

(1) कोमल विकृत स्वर

जब स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से एक स्वर नीचे होकर गाया या बजाया जावे तो उसे कोमल विकृत 'स्वर' कहते है। इनकी संख्या 4 है तथा इनकी पहचान के लिये स्वर के नीचे आड़ी लकीर लगाई जाती है। जैसे रे ग ध नि

(2) तीव्र विकृत स्वर

जब स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से एक स्वर ऊपर होकर गाया या बजाया जाये तो उसे 'तीव्र विकृत स्वर' कहते है। इसकी संख्या एक है। तीव्र स्वर का पहचान चिन्ह – स्वर के ऊपर खडी लकीर का प्रयोग किया जाता है जैसे..... मं

सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है 'सात' । संगीत के मूल शुद्ध स्वर सात मानें गये है। सात स्वरों के समूह को जब एक क्रम से लिखा या गाया–बजाया जाता है, तो उसे 'सप्तक' कहते है। जैसे –सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

इसराज वाद्य

सा से नि तक एक सप्तक होता है। इसमें प्रत्येक स्वर की आन्दोलन संख्या अपने पिछले स्वंर से अधिक होती है। दूसरे शब्दों में कहे तो षडज (सा) से जैसे – जैसे आगे बढते जाते है, स्वर की आंदोलन संख्या बढती जाती है, जैसे रे की सा से अधिक, ग की रे से अधिक 'म' की ग स्वर से अधिक होती है। इसी प्रकार प, ध और नि की आन्दोलन संख्या अपने पिछले स्वरों से ज्यादा होती है।

पंचम स्वर की आंदोलन संख्या 'सा' से डेढ गुनी अर्थात 3/2 गुनी होती है। उदाहरण के लिये अगर सा की आन्दोलन संख्या 240 है तो प स्वंर की आंदोलन सख्या 240 की डेढ गुनी 360 होगी।

सा से नि तक एक सप्तक होता है। सप्तक में शुद्ध व विकृत मिलाकर कुल 12 स्वर होते है, सामान्यतः क्रियात्मक संगीत में तीन सप्तक प्रयोग में लाये जाते है।

जिन्हे क्रमशः मन्द्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक कहते है।

सप्तक

मन्द्र सप्तक | मध्य सप्तक | तार सप्तक

(1) मन्द्र सप्तक

मध्य सप्तक के पहले का सप्तक मन्द्र सप्तक कहलाता है, जिस सप्तक के स्वरों की आवाज नीचे हो अथवा मध्य सप्तक के स्वरों से आधी हो उसे ''मन्द्र सप्तक'' कहते है। मन्द्र सप्तक के प्रत्येक स्वर की आन्दोलन संख्या मध्य सप्तक के उसी स्वर के आंदोलन संख्या से आधी होगी। उदाहरणार्थ अगर मध्य सप्तक के पंचम (4) की आंदोलन संख्या 360 है, तो मन्द्र पंचम की आंदोलन संख्या 360 से आधी, 180 होगी। इसीलिये मन्द्र के स्वरों की आवाज मध्य से ठीक आधी होती है। मन्द्र के स्वरों को पहचानने का चिन्ह मातखण्डे स्वरलिपि पद्वति के अनुसार स्वरों के नीचे बिन्दु लगता है, जैसे **ग़ म़ प़ ध़ नि़**।

(2) मध्य सप्तक

मन्द्र सप्तक से दुगुनी आवाज होने पर मध्य सप्तक कहलाता है। मध्य सप्तक के स्वरों की आवाज न अधिक नीची, न अधिक ऊंची होती है। इस सप्तक का उपयोग गायन वादन में अन्य सप्तकों की अपेक्षा अधिक होता है। ये सप्तक अन्य दो सप्तकों के मध्य में होता है। इसीलिये इसे मध्य सप्तक कहा गया है। इस सप्तक के स्वरों को पहचानने के लिये कोई चिन्ह का प्रयोग नही किया जाता। जैसे, सा रे ग म प ध नि। (कोई पहचान चिन्ह नही।)

(3) तार सप्तक

मध्य सप्तक के बाद का सप्तक ''तार सप्तक'' कहलाता है। यह सप्तक मध्य सप्तक से दुगुनी ऊंची आवाज में गाया अथवा बजाया जाने वाला सप्तक है। इस सप्तक के किसी स्वर की आंदोलन संख्या, मध्य सप्तक के उसी स्वंर की आंदोलन संख्या से ठीक दुगुनी होती है – उदाहरण के लिये मध्य सा की आंदोलन संख्या 240 है तो तार सा की 480 होगी। मध्य के रे की आंदोलन संख्या 270 है तो तार सप्तक के रे की आंदोलन संख्या 540 होगी। इस सप्तक के स्वर का पहचान चिन्ह – सं रें गं मं पं (स्वर के ऊपर बिंदी)

अलंकार

वर्ण की नियमित रचना अथवा विशिष्ट स्वर समुदाय को अंलकार कहते है। अलंकार को पलटा भी कहते है। अलंकार में कई कड़िया होती है, जो आपस में जुडी होती है। प्रत्येक अलंकार में मध्य सा से तार सां तक आरोही वर्ण और तार सां. से मध्य सा तक अवरोही वर्ण हुआ करता है। स्वरों की नियमानुसार उलट–पुलट रचना में ही अलंकार कहते है। संगीत दर्पण में अंलकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है –

''विशिष्ट – वर्ण – संदर्भ अलंकार प्रचक्षते ''

अर्थात नियमित वर्ण समूह को अंलकार कहते है। अलंकार शब्द का अर्थ 'आभूषण या गहना है। जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा बढाते है, उसी प्रकार अलंकारों द्वारा गायन व वादन की शोभा बढती है। अलंकार की प्रत्येक कडी में स्वरों की संख्या व घुमाव समान होना चाहिये।

वायलिन वाद्य

स्वर का शीघ्र ज्ञान होना व राग का विस्तार करना अलंकार का मुख्य उद्‌देश्य है। अलंकार से ही संगीत शिक्षा प्रारम्भ की जाती है।

''वाद्य'' के विद्यार्थियों को नित्य प्रति अलंकार का अभ्यास करना चाहिये, जिससे कि अंगुलियां अपने वाद्य पर विभिन्न प्रकार से घूमने योग्य हो जाती है। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक प्रवृति को प्रोत्साहन मिलता है। 'अलंकार अभ्यास से गायन के विद्यार्थियों का कंठ मधुर हो जाता है, गीत की रचना करने में भी सहायता मिलती है। अलंकार वर्ण, समुदाय में ही होते है। अलंकार के आरोह व अवरोह में नियमबद्धता होनी चाहिये। आरोह के स्वर के अनुसार ही अवरोह ठीक उलटा होना चाहिये अर्थात स्वर का चढ़ता क्रम

व उतरता क्रम नियमानुसार होना चाहिये। उदाहरण के लिये,

(1) आरोह : सा रे रे ग म, रे ग ग म प, ग म म प ध, म प प ध नि, प ध ध नि सां,
अवरोह : सां नि नि ध प, नि ध ध प म, ध प प म ग, प म म ग रे, म ग ग रे सा।

(2) आरोह : सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि, ध नि सां,
अवरोह : सां नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा।

(3) आरोह : सा रे सा ग, रे ग रे म, ग म ग प, म प म ध, प ध प नि, ध नि ध सां,
अवरोह : सां नि सां ध, नि ध नि प, ध प ध म, प म प ग, म ग म रे, ग रे ग सा।

इस प्रकार अनेक अलंकारों की रचना हो सकती है।

राग

राग ध्वनि की एक ''खास रचना'' है, जिसे स्वर और वर्ण से सुन्दरता प्राप्त होती है, जो चित्त को आनंदित करती है।

कम से कम पांच और अधिक से अधिक सात स्वरों की वह सुन्दर रचना जो कानों को मधुर लगे, राग कहलाती है। आजकल राग गायन ही प्रचार में है। अभिनव राग मंजरी में राग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

योऽयं ध्वनि– विशेषस्तु स्वर– वर्ण– विभूषितः।
रंजको जन चित्तानां स राग कथितो बुधैः।।

अर्थात स्वर और वर्ण से विभूषित ध्वनि, जो मनुष्य का मनोरजंन करे, राग कहलाता है। राग से विभिन्न रसों की अनुभूति होती है। आधुनिक समय में राग के निम्नालिखित लक्षण माने जाते हैः–

वह रचना जो कानों को अच्छी लगे, राग कहलाती है। इसलिये यह स्पष्ट है कि प्रत्येक राग में रंजकता होनी चाहिये।

(1) राग में कम से कम पांच स्वर और अधिक से अधिक सात स्वर होने चाहिये। पांच स्वरों से कम का राग नही होता।

(2) प्रत्येक राग को किसी न किसी थाट से उत्पन्न माना गया है, उदा. यमन को कल्याण थाट से माना गया है।

(3) किसी भी राग में षडज (सा) कभी वर्जित नही होता, क्योकि यह सप्तक का आधार स्वर होता है।

(4) किसी भी राग में म और प में से कोई एक स्वर अवश्य रहना चाहिये। कोई राग ऐसा नही है, जिसमें म और प दोनो एक साथ वर्ज्य होते हो।

(5) प्रत्येक राग में आरोह अवरोह पकड वादी संवादी, गायन– वादन समय आदि आवश्यक है।

राग की जाति

राग के आरोह अवरोह में लगने वाले स्वरों की संख्या से राग की जाति का बोध होता है। किसी भी राग में कम से कम पांच और अधिक से अधिक सात स्वर प्रयोग किये जा सकते है। अतः संख्या की दृष्टि से राग

के मुख्य तीन प्रकार होते हैः–

(1) पांच स्वर वाले राग

(2) छः स्वर वाले राग

(3) सात स्वर वाले राग।

दामोदर पंडित लिखित ''संगीत दर्पण'' में कहा गया हैः–

औडव : पंचभि प्रोक्ताः स्वरैः षडभिश्च षाडवा।
सम्पूर्ण सप्तभिज्ञैय एवं रागास्त्रिधा मतः।।

अर्थात पांच स्वर वाले रागों की जाति औडव छः स्वर वालें रागों की जाति षाडव सात स्वर लगने वाले रागों की जाति सम्पूर्ण। रागों की मुख्य तीन जातियों से यह पता चलता है कि किसी राग के आरोह– अवरोह में कितने स्वर प्रयुक्त होते है। अधिकांश रागों में यह देखा जाता है, कि आरोह व अवरोह में लगने वाली स्वरों की संख्या समान नही होती, जैसे राग देस के आरोह में पांच और अवरोह में सात स्वर प्रयोग किये जाते है और खमाज में आरोह में 6 स्वर तथा अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किये जाते है इत्यादि। इस प्रकार राग की मुख्य तीन जातियों से कुल मिलाकर 9 जातियां होती है जो इस प्रकार है :–

(1) औडव – औडव
(2) औडव – षाडव
(3) औडव – सम्पूर्ण
(4) षाडव – षाडव
(5) षाडव – औडव
(6) षाडव – सम्पूर्ण
(7) सम्पूर्ण – सम्पूर्ण
(8) सम्पूर्ण – षाडव
(9) सम्पूर्ण – औडव

इकतारा वाद्य

थाट

सप्तक के बारह स्वरों में से 7 क्रमानुसार मुख्य स्वरों के उस समुदाय को थाट कहते है, जिससे राग उत्पन्न होते हो, थाट को मेल भी कहा जाता है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में 'मेल' शब्द ही प्रयोग किया जाता था।

भातखण्डे जी द्वारा लिखित 'अभिनव राग मंजरी' में कहा गया है :

'मेल स्वर– समूह : स्याद्राग व्यजन् शक्तिमान' अर्थात स्वरों के उस समूह को मेल या थाट कहते है, जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो।

थाट के निम्नलिखित लक्षण माने गये है :

(1) प्रत्येक थाट में अधिक से अधिक व कम से कम सात स्वर प्रयोग किये जाने चाहिये।

(2) थाट सम्पूर्ण होने के साथ– साथ उसके स्वर स्वाभाविक क्रम से होने चाहिये।

(3) किसी भी थाट में आरोह – अवरोह दोनो का होना आवश्यक नही है। क्योकि आरोहावरोह में कोई अन्तर नही होता।

(4) थाट गाया बजाया नही जाता। अतः उसमें मधुरता होना आवश्यक नही है।

(5) थाट में केवल राग उत्पन्न करने की क्षमता होती है।

थाटों की संख्या

हिन्दुस्तानी संगीत पद्वति में दस थाट माने जाते है। इन दस थाटों से समस्त राग उत्पन्न माने गये है।आधुनिक काल में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे ने थाट पद्वति से दस (10) थाटों की संख्या ग्रहण किए जो हिन्दुस्तानी संगीत पद्वति का आधार है।दस थाटों के नाम निम्नलिखित हैः–

1. बिलावल थाट – प्रत्येक स्वर शुद्व।
2. कल्याण थाट – म स्वर तीव्र तथा अन्य स्वर शुद्व।
3. खमाज थाट – नि कोमल व अन्य स्वर शुद्व।
4. आसावरी थाट – ग, ध, नि कोमल तथा अन्य स्वर शुद्व।
5. काफी थाट : ग और नि कोमल, अन्य स्वर शुद्व।
6. भैरव थाट : रे और ध कोमल, अन्य स्वर शुद्व।
7. भैरवी थाट : रे, ग, ध, नि स्वर कोमल, अन्य शुद्व।
8. मारवा थाट : रे कोमल, म तीव्र तथा अन्य शुद्व।
9. पूर्वी थाट : रे, ध कोमल, म तीव्र व अन्य शुद्व।

तोडी थाट : रे, ग, ध, कोमल, म तीव्र व अन्य शुद्व।

शहनाई वाद्य

जमजमा

यह शब्द 'फारसी' भाषा का है। यह एक प्रकार का कण है। जिसमें तर्जनी और मध्यमा दोनों उंगलियों का प्रयोग होता है। सितार में किसी भी स्वर पर तर्जनी द्वारा वाद्य के तार को दबाकर, उससे अगले पर्दे पर मध्यमा अंगुली को जोर से मारे तो जिस स्वर पर मध्यमा अंगूली पडेगी, उस स्वर की एक हल्की सी ध्वनि सुनाई देगी। इस क्रिया को 'जमजमा' कहते है। उदाहरण जब हम सा के परदे पर तर्जनी रखकर मिजराब से एक बार आघात कर दे और बिना मिजराब लगाये हुये सा के तुरन्त बाद मध्यमा अंगुली से रे के परदे पर प्रहार करे, हम अनुभव करेगे कि हल्की सी रे की ध्वनि भी सुनाई पडेगी, इस प्रकार ये सा रे होगा। हम चाहे तो रे स्वर पर 2–3 बार भी शीघ्रता से आघात कर सकते है। जिसमें मिजराब सिर्फ बजने में यह स्वर सा रे, सा रे होगा अथवा रे ग रे ग ।

मींड

जब दो या अधिक स्वर इस ढंग से गायें या बजाये कि स्वर अटूट हो, जैसे किसी तार वाद्य के स्वर पर अंगुली रखकर आघात करके उसी स्थान से आगे के स्वर को भी प्रकट कर दे तो इस क्रिया को मींड कहेगे। मींड लेते समय स्वरों का इस प्रकार स्पर्श होता है, कि वे अलग – अलग सुनाई नही पडते।

मींड भारतीय संगीत की विशेषता है, इससे गायन तथा वादन (तारवाद्य) में लोच और रंजकता आती है। यह बिलंबित लय की क्रिया होती है। जो भक्ति, शोक और शान्त जैसे स्थायी भावों को दर्शाने में सहायता

करती है, मीड निकालने के लिये स्वरों के ऊपर उल्टा अर्ध–चन्द्राकार चिन्ह का प्रयोग किया जाता है
जैसे– सां म, रें प, प नि

बांसुरी वाद्य

गमक

जब आन्दोलित स्वर पर बल देकर उसको प्रयोग में लाया जाता है, तो उसको गमक कहते है। यह क्रिया गतों के तोडों में विशेष रूप से देखने को मिलती हैं संगीत रत्नाकर में गमक की परिभाषा इस प्रकार दी है **'स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृ– चित– सुखावहः'' ।** अर्थात स्वरों के ऐसे कम्पन्न को गमक कहते है जो सुनने वाले के चित्त को सुखदायी हो।

इस तरह प्राचीन काल में स्वरों के एक विशेष प्रकार के कंपन को, जो सुनने में अच्छे लगे, गमक कहते थे। उस समय गमक के 15 प्रकार माने जाते थे, जैसे – कंपित, आंदोलित स्फुरित, आहत, प्लावित, उल्हासित, त्रिभिन्न तिरिप, वली, हम्पित, लीन, मुद्रित, करूला, नमित, मिश्रित। गमक ही कण, मींड सूत की उत्पत्ति का कारण है। स्वरों का कम्पन ही गमक कहलाता है।

गत

जब किसी राग के स्वरों की रचना तालवद्व करके सरोद इसराज, वायलिन गिटार आदि किसी वाद्य पर बजाते है तो उसे गत कहते है, गत हर राग में होती है।

विशेषतः सितार वाद्य हेतु

राग के स्वर एवं सितार के बोलों की ताल बद्व रचना को गत कहते है। मिजराब के विभिन्न बोलो की तरह – तरह से रचना करके विभिन्न शैलियों से सितार बजाने को बाज कहते है। वादन शैलिया तीन प्रकार की है।

(1) मसीतखानी बाज
(2) अमीरखानी बाज
(3) रजाखानी बाज।

इस वादन शैलियों में मुख्य मसीतखानी तथा रज़ाखानी में दो प्रमुख रचनायें मानी जाती है, जैसे गायन में तान, पलटें होते है, उसी प्रकार गत में, तोडा, तान, तिहाईयां और झाले इत्यादि होते है।

सितार वाद्य

मसीतखानीगत

अमीर खुसरों की वंश परम्परा के मसीत खां ने इस नवीन गत का आविष्कार किया। इस गत का नामकरण इसके आविष्कार के आधार पर हुआ। मसीतखानी गते बिलंबितलय में होती है तथा खाली की 3 मात्रा बाद से अर्थात 12वी मात्रा से शुरू करते है। इसके बोल इस प्रकार होते है –

दिर / दा दिर, दा रा / दा रा रा दिर / दा दिर दा रा दा दा रा / मसीतखानी गत के लिये पांच मात्रें का टुकडा तथा उपर्युक्त क्रमानुसार बोलो का होना आवश्यक है। इसमें मींड, गमक की अधिक गुजांईश रहती है। मसीत खानी गत को दिल्ली बाज भी कहते है। मसीत खां ने सितार के परदों की संख्या 23 तक बढाकर उसे अचल थाट बना दिया और एक नई वादन शैली का किया।

रजा़खानी गत

जौनपुर के रजा खां, अमीर खां के शार्गिद थे, जिन्होने रजा़खानी या पूरब बाज का आविष्कार किये, इसे द्रुत गत भी कहते है। रजाखानी गत, मसीतखानी गत के बिल्कुल विपरीत मध्य और द्रुत लय में बजाई जाती है। अतः मसीत खानी गत के समान गम्भीर न होकर यह चंचल प्रकृति की होती है।

रजाखानी गत में वादक अपनी तैयारी दिखाता है। रजाखानी गत को पूर्वी बाज और मसीतखानी गत को दिल्ली अथवा पश्चिमी बाज भी कहते है।

इस गत रचना में दिर, दार, दारा दा ऽ र दा, दा दिर, दिर दिर दा ऽ र दा ऽ र दा आदि बोल बजाये जाते है। इसमें गतकारी, चिकारी, तैयारी के साथ तोडे तथा लडी का काम दिखाते हुये विभिन्न प्रकार के झाले का प्रदर्शन किया जाता है। सितार वादन में मसीतखानी गत बजाने के पश्चात रजाखानी गत बजाये जाने की प्रथा है। जिस प्रकार ख्याल गायन में विलंबित (बडा) ख्याल के बाद द्रत ख्याल (छोटाख्याल) गाने की परम्परा है।

महत्वपूर्ण बिन्दू

नाद	–	संगीत उपयोगी मधुर ध्वनि
श्रुति	–	वह ध्वनि जो एक दूसरे से भिन्न तथा स्पष्ट सुनाई दे।
स्वर	–	नियमित व स्थिर आंदोलन संख्या वाली ध्वनि।
सप्तक	–	सात स्वरों का समूह
अलंकार	–	स्वरों की वह नियमित रचना जो आरोहावरोह में नियमबद्धता लिए हो।
राग	–	ध्वनि की वह विशिष्ट रचना, जिसे स्वर और वर्ण से सुन्दरता प्राप्त हो।
जमजमा	–	एक ऐसा कण जिसमें तर्जनी व मध्यमा दोनों अंगुली का प्रयोग हो।
मींड	–	किसी एक स्वर को बजाकर तथा उसी स्वर से 2–3 स्वर और प्रकट कर दिये जाये।
गत	–	वाद्य संगीत की स्वरबद्ध व तालबद्ध रचना।
मसीतखानी गत	–	वह गत जो विलंबित लय में बजाई जाये।
रज़ाखानी गत	–	वह गत जो द्रुत लय में बजाई जाये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नाद को परिभाषित करते हुये, नाद के भेद को समझाईये।
2. नाद की तीनों विशेषताओं का वर्णन करे।
3. निम्नलिखित की टिप्पणी लिखे :
   (1) श्रुति (2) स्वर (3) सप्तक (4) अलंकार
4. राग और थाट की परिभाषा दीजिये।
5. भातखण्डे जी द्वारा रचित आधुनिक दस थाट के नाम लिखे।
6. जमजमा, गमक, और मींड को परिभाषित करे।
7. गत किसे कहते है। रजाखानी और मसीतखानी गत में क्या अंतर है। समझाईये।

इस अध्याय में विद्यार्थियों की जानकारी हेतु विभिन्न स्वर वाद्यों के चित्र दिए गए हैं न कि अध्याय की विषयवस्तु विभिन्न परिभाषाओं के।